International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 385-386

समकालीन पाश्चात दर्शन में तार्किक भाववाद की प्रासंगिकता

सुशील चन्द्र
प्रवक्ता बी0एड0, सीताराम समर्पण पी0 जी0 कालेज, नरैनी, बाँदा, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के दूसरे भाग में तार्किक भाववाद का दर्शन बड़े प्रबल रूप में प्रभावशाली हुआ। यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि एक ढंग से इसने दार्शनिक चिन्तन के प्रचलित ढंग पर कुछ ऐसा तीव्र प्रहार किया कि इसके बाद दार्शनिक चिन्तन के ढंगों में सर्वथा नवीन परिवर्तन होते रहे।

इस विचार के लिए तार्किक भाववाद तथा तार्किक अनुभववाद के अतिरिक्त वैज्ञानिक अनुभववाद का नाम भी प्रचलित हुआ है। किन्तु चलन 'तार्किक भाववाद' का ही है, केवल ब्रिटेन जैसे अनुभववादी परम्परा के विचारकों ने इसे तार्किक अनुभववाद कहना ठीक समझा।

अपने इस भाववाद को इन लोगों ने तार्किक कहा है क्योंकि जिस ढंग अथवा विधि से इस भाववाद को सँवारा गया है वह विविध तार्किक है। इनकी मान्यता है कि इस भावभाव को स्थापित करने या सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि अनुभव एवं विज्ञान ही इनके पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। अतः अनुभव एवं विज्ञान ही इस भाववाद का विषय है, किन्तु इस विषय का स्पष्टीकरण आवश्यक है। भाववाद विज्ञान पर आश्रित है। तार्किक भाववादी भी वैज्ञानिक कथनों को ही मूल मानते हैं, किन्तु वे कथन प्रायः अस्पष्ट तथा अनेकार्थक होते हैं। अतः उनका सही अर्थ–निरूपण अनिवार्य है, और यह कार्य दर्शन कर सकता है क्योंकि दर्शन के पास इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए तार्किक विधियाँ हैं। अतः तार्किक भाववादी तार्किक विश्लेषण तथा तार्किक संरचना की विधि को अपनाकर, उसी के माध्यम से अपने भाववादी निष्कर्ष को बढ़ाते हैं। इसी कारण इनका भाववाद तार्किक है।

तार्किक भाववाद का उद्‌भव बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में विएना में हुआ। कुछ व्यक्तियों ने मिलकर एक वैचारिक संगठन बनाया जिसे 'विएना सर्कल' के नाम से जाना गया। इसमें प्रमुख व्यक्ति मौरिज स्लिक था। यह दर्शनशास्त्री, वैज्ञानिक, गणितज्ञ सबका संगठन था। इसमें दर्शन के क्षेत्र से स्लिक के अतिरिक्त ओटो न्यूराथ, रूडाल्फ कारनैप, हर्बट फाइगल, फ्रेड्रिक वाइजमैन, विक्टर क्राफ्ट आदि थे।

तार्किक भाववाद के दो लक्ष्य बन गये थे, एक निषेधात्मक तथा दूसरा भावात्मक। निषेधात्मक कार्य यह था कि तत्त्व–दर्शन का खण्डन/निरसन किया जाय। इन लोगों ने इस उद्‌देश्य की पूर्ति यह दिखला कर करना चाहा कि तात्त्विक सत्ता संबंधी सभी कथन अर्थहीन हैं। इस बात को स्थापित करने के लिए उन्होंने एक अर्थ–सिद्धान्त प्रतिपादित किया जो अर्थ के सत्यापन सिद्धान्त के नाम से विख्यात हुआ अपने भावात्मक उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यदि यथार्थ ज्ञान विज्ञान में ही उपलब्ध हैं, तो दर्शन को इसे स्वीकार कर ही अग्रसर होना अनिवार्य है। अतः इनके अनुसार दर्शन का मूल कार्य विज्ञान के कथनों में निहित अस्पष्टता, अनेकार्थकता एवं व्यामिश्र को दूर करना है। इस कार्य के लिए इन लोगों ने तार्किक भाषा–विश्लेषण का ढंग निकाला।

अब इन दोनों ढंगों में कुछ ऐसी नवीनता थी कि विचारकों का ध्यान इन सिद्धान्तों पर स्वभावतः आकृष्ट हुआ। प्रथमतः जो इनका सत्यापन अर्थ–सिद्धान्त था, उसी की आलोचना आरंभ हो गयी। यह कहना गलत नहीं है कि 'तार्किक भाववाद' के ऐतिहासिक विकास का एक माध्यम इस प्रकार की आलोचनाएँ भी हैं। पहले–पहल इस सिद्धान्त का एक बड़ा सरल रूप प्रतिपादित हुआ, उसकी आलोचना हुई। इसके समर्थकों ने उन आलोचनाओं के आलोक में इस सिद्धान्त के जो प्रतिपादित रूप थे उनमें परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया और आलोचनाएँ हुईं, जिसके फलस्वरूप इस सिद्धान्त में और परिवर्तन करना अनिवार्य समझा गया (इनकी हम एक संक्षिप्त रूपरेखा आगे के एक उपखण्ड में खीचेंगे) होते–होते उनका यह सत्यापन अर्थ–सिद्धान्त दोष–ग्रस्त सिद्ध होने लगा। यह उनका केन्द्रीय सिद्धान्त था, इसी सिद्धान्त के आधार पर वे तात्त्विक उक्तियों को निरर्थक सिद्ध कर रहे थे। किन्तु, जब उनका केन्द्रीय स्तम्भ ही कमजोर पड़ने लगा, तो उनके विचार की उग्रता एवं तेजी शिथिल होने लगी।

कुछ ऐसा ही उसकी भावात्मक योजना के साथ भी हुआ। उन्होंने वैज्ञानिक उक्तियों की अस्पष्टता एवं अनेकार्थकता को दूर करने के प्रयास में एक तार्किक विश्लेषण की विधि को रूप दिया। किन्तु यह विधि भी कुछ पूर्वमान्यताओं से ग्रसित रही, तथा इसकी माँगें कुछ इतनी कड़ी बन गयीं कि यह विधि पूर्णतया आकारिक विधि बनती गयी। फलतः इसके विरुद्ध भी प्रतिक्रिया हुई। इस विधि को प्रतिपादित करने वालों को ही ऐसा प्रतीत होने लगा कि यह विधि भाषा–विश्लेषण का दावा तो करती है, किन्तु भाषीय अभिव्यक्तियों के सभी ढंगों का विश्लेषण नहीं कर सकती। इस विश्लेषण की माँगें कुछ इतनी कड़ी हैं कि इस प्रकार का विश्लेषण पूर्णतया नियमनिष्ठ औपचारिक विश्लेषण हो जाता है। किन्तु इन लोगों को प्रतीत होने लगा कि भाषीय अभिव्यक्तियाँ इतने विविध प्रकार की हैं कि उनका विश्लेषण अनौपचारिक होना चाहिए। फलतः अनौपचारिक विश्लेषण के नये–नये प्रभावशाली ढंग स्पष्ट होने लगे तथा तार्किक भाववादी योजना शिथिल पड़ने लगी।

किन्तु, इसका यह अर्थ नहीं है कि तार्किक भाववाद का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। नहीं, इसके विपरीत इस वैचारिक आन्दोलन का प्रभाव स्पष्ट है। दार्शनिक चिन्तन की प्रगति में जब–जब ठहराव आने लगता है, अथवा जब–जब यह आवश्यकता से अधिक अमूर्त, अवास्तविक एवं काल्पनिक होने लगता है, तब–तब उसकी सार्थकता और उसकी प्रासंगिकता का प्रश्न उठ खड़ा होता है। उस समय कोई मौलिक ढंग से नवीन विचारधारा दार्शनिक चिन्तन के प्रचलित ढंग को झटका दे ही देती है, तथा उसे सजग कर नये ढंग से सार्थक तथा प्रासंगिक बनाने का प्रयास करती है। उस समय का यह प्रयास भले ही बहुत दिन जीवित न रहे, किन्तु

उसकी सार्थकता दार्शनिक चिन्तन को झकझोर देने में है। उस सजगता में दार्शनिक चिन्तन, चिन्तन की नयी दिशाएँ एवं विचार के नये आयाम ढूँढ़ लेता है। इस दृष्टि से 'तार्किक भाववाद' का दार्शनिक चिन्तन की प्रगति में अतुल्य योगदान है। इस झकझोर के फलस्वरूप समकालीन पाश्चात्य दर्शन सर्वथा नये–नये रूपों में निखरने लगा। यही 'तार्किक भाववाद' का ऐतिहासिक महत्त्व है।

सन्दर्भ

1. मोतीलाल बनारसीदास, 41 यू0ए0 बंगाली रोड, जवाहर नगर, दिल्ली 110007
2. एच0एस0 उपाध्याय (2008), पाश्चात्य दर्शन का उद्‌भव और विकास, प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद–211002